Down To Earth
फी च र से वा
अंक 2 संख्या 1
9 जनवरी, 2004

इस अंक में

सुर्खियों में
भोपाल जिन्दा है!

चर्चा में
अगर नदी बंधी ...

संक्षिप्त खबरें

सेंटर फॉर साइंस एण्ड इन्वायरन्मेंट
41, तुगलकाबाद इंस्टीट्यूशनल एरिया
नई दिल्ली - 110062
फोन - 91-11-2995 6394/6399/6110
फैक्स - 91-11-2995 5879
वेबसाइट - www.cseindia.org
ई-मेल - souparno@cseindia.org

सुर्खियों में

भोपाल जिन्दा है!

— रिचर्ड महापात्रा, विभा वार्शनेय और कुशल पी एस यादव

यूनियन कार्बाइड गैस त्रासदी के बीस साल गुजर जाने के बाद भी भोपाल तबाही का पर्याय बना हुआ है। अपसर्जित रसायनों से प्रदूषण फैलना जारी है, स्वास्थ्य सुविधाएं बेकार पड़ी हैं और मुआवजा प्राप्त करना एक दूर का सपना हो चला है

अगर हम सरसरी नजर से देखें तो हत्यारी कम्पनी का प्लांट खंडहर की तरह लगेगा, जिसमें घास-फूस और झाड़ उग आए हैं। बीस साल बाद, इस त्रासदी की यादें और उलझने — अगर भुलाई नहीं गई है — तो काफी हद तक धूमिल जरूर पड़ गई है, लेकिन, सभी पीड़ितों और उनके परिवारों की पीड़ा अभी कम नहीं हुई है।

'*डाउन टू अर्थ*' पत्रिका की टीम को अपनी खोज से पता चला कि भोपाल में इस त्रासदी का आतंक आज भी छाया हुआ है। खण्डहर की तरह दिखने वाला 'यूनियन कार्बाइड इंडिया लिमिटेड' (यूसीआईएल) प्लांट पारा समेत 2,000 मिट्रिक टन के जानलेवा रसायनों और भारी धातुओं से भरा पड़ा है। इन वर्षों में, ये सभी जहरीले तत्त्व भूजल में रिस-रिसकर पहुंच चुके हैं और यहा की मिट्टी भी प्रदूषित हो गई है।

इस फैक्टरी के आसपास की 50,000 की आबादी वाली पाँच आवासीय कालोनियों की मिट्टी और पानी में 21 तरह के रसायन पाए गए हैं। रसायन और भारी धातु भोजन चक्र में प्रवेश कर चुका है। यहां तक कि माँ के दूध में भी निकल, क्रोमियम, पारा, सीसा, डिक्लोरोबेंजीन, डिक्लोरोमेथेन और क्लोरोफॉम्स जैसे जहरीले तत्त्व मौजूद हैं।

सन् 2002 में देहरादून आधारित 'पीपुल्स साइंस इंस्टीट्यूट' ने इस प्लांट के आसपास की विभिन्न कॉलोनियों के छः चापाकलों (हैडपम्प) से पानी के नमूने एकत्रित किए। इनके 75 प्रतिशत नमूनों में पारे का स्तर भारतीय मानक ब्यूरो द्वारा मान्य स्तर (1 माइक्रोग्राम प्रति लीटर) से कहीं ज्यादा पाया गया।

सरकारी दस्तावेजों के मुताबिक, यूसीआईएल को सन् 1989 में ही अपने भोपाल प्लांट के स्वास्थ्य जोखिमों की पूरी-पूरी जानकारी थी। इस फैक्टरी द्वारा किए गए प्रयोगशाला

आप बिना किसी लागत के इन लेखों को पुनः तैयार कर सकते हैं, परन्तु इसके लिए इन लेखों के लेखक/लेखकों के नाम तथा सीएसई/डाउन टू अर्थ फीचर सेवा दर्ज करना अनिवार्य है। © CSE/Down To Earth Feature Service 2003

जांच से प्रदर्शित हुआ कि इसके आसपास की मिट्टी और पानी जहरीला है। सन् 1994 में, इस कम्पनी द्वारा कराए गए अध्ययन में इस प्लांट के भीतर के 21 स्थल तो बेहद प्रदूषित पाए गए।

भोपाल में करीब 5 लाख लोग ऐसी बीमारियों से ग्रस्त हैं, जिन्हें 'इंडियन काउंसिल ऑफ मेडिकल रिसर्च' (आईसीएमआर) ने 'भोपाल गैस की बीमारी' के रूप में पहचान की है। इस बीमारी के 40 तरह के लक्षण हैं, जिनमें पीठ के दर्द से लेकर सांस लेने की तकलीफ तक शामिल है। आईसीएमआर ने पिछले 10 सालों में 84,000 पीड़ितों का अध्ययन कर लेने के बाद और अगले नौ साल अपने अध्ययन की समीक्षा करने में लगाने के बाद भी इस शोध के परिणामों को प्रकाशित नहीं किया है।

आईसीएमआर के अध्ययन से इस बीमारी के ''सटीक कारक एजेंट'' पर उंगली नहीं उठ पाई है। इसका मुख्य कारण है कि यूसीआईएल ने व्यापारिक गोपनीयता का उपयोग किया है, मानो रिसे गैसों के सटीक संयोजन की जानकारी दबाकर रखना उनका परमाधिकार है। इसी कारण से यूसीआईएल के सहयोग के बिना प्रदूषण साफ करना और डॉक्टरी उपचार कर पाना संभव नहीं हो पाया है।

अन्य अध्ययनों से इस संकट के ऐसे संकेत मिले हैं, जिनसे भोपाल जूझ रहा है। यहां कैंसर और मानसिक बीमारी होना एक आम बात है। सरकार गरीबी की रेखा से नीचे जीने वालों के लिए कैंसर का मुफ्त उपचार उपलब्ध कराने का दावा करती है। परन्तु इन सेवाओं को पाने की लम्बी और दुरूह प्रक्रिया होने के कारण पीड़ित लोगों को आखिरकार निराश ही होना पड़ता है।

आईसीएमआर के अध्ययन से इस बीमारी के ''सटीक कारक एजेंट'' पर उंगली नहीं उठ पाई है। इसका मुख्य कारण है कि यूसीआईएल ने व्यापारिक गोपनीयता का उपयोग किया है, मानो रिसे गैसों के सटीक संयोजन की जानकारी दबाकर रखना उनका परमाधिकार है। इसी कारण से यूसीआईएल के सहयोग के बिना प्रदूषण साफ करना और डॉक्टरी उपचार कर पाना संभव नहीं हो पाया है

अक्टूबर 2002 तक भोपाल के हस्पतालों में बिस्तरों की संख्या बढ़ाने पर 219.08 करोड़ रुपया खर्च किया गया है। परन्तु सर्वेक्षण से इस बात का खुलासा हुआ है कि इन हस्पतालों में स्वास्थ्य कर्मियों की संख्या काफी कम है और इनमें बुनियादी उपकरण तक उपलब्ध नहीं हैं।

एक बहु-चर्चित 'भोपाल मेमोरियल ट्रस्ट हॉस्पिटल' जिसे सन् 1998 में यूसीआईएल शेयरों की बिक्री की रकम से निर्मित किया गया था, उससे भी कोई ज्यादा मदद नहीं मिली है। यहां उन्हीं पीड़ितों का उपचार किया जाता है, जो इसका खर्च झेल सकते हैं। गैस पीड़ितों को उपचार सेवाएं प्राप्त करने के लिए 'स्मार्ट कार्ड' की जरूरत पड़ती है और यह कार्ड अदालत के समुचित दस्तावेज पेश करने के बाद ही प्राप्त हो सकता है।

मुआवजा और पुनर्स्थापन भी एक ऐसा क्षेत्र है, जिसपर नाममात्र का ही काम हुआ है। 24 वर्षीय गैस पीड़ित आशा को सन् 1989 में मात्र 10,600 रुपए का मुआवजा मिला। इसी वर्ष अलास्का में तेल फैलने से प्रभावित प्रत्येक समुद्री ऊदबिलाव को 40,000 यूएस डॉलर और रोजाना समुद्री झींगा का भोजन प्राप्त हुआ, जिसकी कीमत 500 यूएस डॉलर होगी। समुद्री ऊदबिलाव का पुनर्स्थापन कार्यक्रम अभी भी जारी है, जबकि भारत सरकार ने भोपाल गैस पीड़ितों को उनके हाल पर छोड़ दिया है।

यूसीआईएल द्वारा मुआवजे के भुगतान की मूल रकम यानी 1,360 करोड़ रुपया बिना खर्च के पड़ा हुआ है — और केन्द्र व राज्य सरकार इसकी खींचातानी करने में लगे हुए हैं। राज्य सरकार इस पैसे को खर्च करने के लिए अनेक प्रस्ताव पेश कर चुकी है, लेकिन केन्द्र ने इन सभी प्रस्तावों को खारिज कर दिया है। यह कहने की जरूरत नहीं है कि गैस पीड़ितों को इनके विचार-विमर्श में कहीं शामिल नहीं किया गया है।

सन् 1984 की गैस त्रासदी के बाद भोपाल में फैलने वाले प्रदूषण की रोकथाम करने के लिए अनेक नियंत्रण कानून पारित हुए। परन्तु इन कानूनों को लागू करना दूर का सपना बना हुआ है। कुछ लोगों के मुताबिक, सरकार में उद्योग को नियमानुसार चलाने की इच्छा शक्ति का अभाव है। इसके फलस्वरूप उद्योग मानदण्डों का खुल्लम-खुल्ला उल्लंघन करते हैं।

यद्यपि भारतीय नियंत्रकों ने भोपाल की अवहेलना ही की है, लेकिन यूएस ने भोपाल त्रासदी से सबक लेते हुए अपने नियंत्रक तंत्र को दुरूस्त किया है। इस देश ने एक फंड बनाया है, जिसके तहत किसी दूषित स्थल को साफ करने की जिम्मेदारी उल्लंघन करने वाले कार्पोरेशन पर होती है। सन् 1986 में 'यूएस टॉक्सिक रिलीज इन्वेंटरी' से यह सुनिश्चित हुआ है कि प्रत्येक जोखिमपूर्ण तत्त्व के लिए नियंत्रक और कम्पनियां जिम्मेदार होंगे। इसके पाँच साल के भीतर ही 70 रसायनिक प्लांट सुरक्षित स्थानों में पुनर्स्थापित हुए और कई अन्य प्लांटों के काम बंद हो गए।

भारत को भोपाल जैसा कोई और हादसा टालने के लिए और भी ज्यादा प्रयास करने होंगे। ''इसमें भारतीय जीवन का मूल्य बढ़ाना मददगार साबित होगा,'' ऐसा यूएसए में जोर्जिया स्थित एमोरी ईस्टसाइड ऑकुपेशनल हैल्थ सेंटर के वी आर धारा कहते हैं, ''आज कोई नियंत्रक व्यवस्था बनाने के बजाय सैकड़ों भारतवासियों को मारना ज्यादा सस्ता पड़ता है। अगर दुर्घटनाओं की लागत प्रौद्योगिकी और नियंत्रक व्यवस्था की लागत से ज्यादा कर दिया जाए, तो स्वाभाविक है कि उद्योग इसमें सस्ते विकल्प का चुनाव करेंगे।'' **सीएसई/डाउन टू अर्थ फीचर्स सेवा**

सन् 1984 की गैस त्रासदी के बाद भोपाल में फैलने वाले प्रदूषण की रोकथाम करने के लिए अनेक नियंत्रण कानून पारित हुए। परन्तु इन कानूनों को लागू करना दूर का सपना बना हुआ है। कुछ लोगों के मुताबिक, सरकार में उद्योग को नियमानुसार चलाने की इच्छा शक्ति का अभाव है। इसके फलस्वरूप उद्योग मानदण्डों का खुल्लम-खुल्ला उल्लंघन करते हैं

चर्चा में

अगर नदी बंधी . . .

— आनन्द कुमार, जो नई दिल्ली स्थित इंस्टीट्यूट फॉर कॉन्फलिक्ट मैनेजमेंट में संयुक्त शोधक है

खुशी और मातम में डूबी परियोजना

भारत में पानी की बढ़ती आवश्यकता शीघ्र ही पूरी हो जाएगी, अगर एक बार हिमालय की नदियां और प्रायद्वीप इलाके की नदियां एक विशाल परियोजना के तहत 30 अंतर्संबंधी नहर व्यवस्थाओं के साथ जोड़ दी गईं, जिसको लेकर कहीं खुशी मनाई जा रही है, तो कहीं मातम। इस पहल-कदमी का पूरे दक्षिण एशिया पर असर पड़ेगा।

भारत सरकार ने 500,000 करोड़ रुपए की लागत की इस परियोजना का क्रियान्वयन करने के लिए पूर्व ऊर्जा मंत्री, सुरेश प्रभु की अध्यक्षता में एक कार्यदल गठित कर लिया है। सन् 2005 तक इसकी रिपोर्ट मिलने की संभावना है और उसके 10 वर्षों बाद इस परियोजना के प्रभावों का एहसास हो पाएगा।

इस परियोजना के संबंध में यह तर्क दिया जाता है कि इससे जल वितरण के असंतुलन में सुधार होगा और सिंचाई में वृद्धि के साथ अनाज का उत्पादन भी बढ़ेगा। ऐसी अपेक्षा की जाती है कि इससे 1,35,000 वर्ग किलोमीटर की कृषि जमीन को सींचने और 34,000 मेगावॉट की बिजली का उत्पादन करने के लिए पर्याप्त पानी प्राप्त होगा।

भारत सरकार ने 500,000 करोड़ रुपए की लागत की इस परियोजना का क्रियान्वयन करने के लिए पूर्व ऊर्जा मंत्री, सुरेश प्रभु की अध्यक्षता में एक कार्यदल गठित कर लिया है। सन् 2005 तक इसकी रिपोर्ट मिलने की संभावना है और उसके 10 वर्षों बाद इस परियोजना के प्रभावों का एहसास हो पाएगा

इस परियोजना की पर्यावरण के आधार पर आलोचना करने वालों का मानना है कि इस प्रक्रिया में जंगल का एक बड़ा हिस्सा डूब जाएगा; वन्य जीव मारे जाएंगे, समुदाय उजड़ जाएंगे तथा पानी की गुणवत्ता खराब होगी और स्थानीय पर्यावरण बिगड़ेगा।

भारत को इस परियोजना के लिए नेपाल और बांग्लादेश के साथ समझौता करना होगा, क्योंकि इन देशों में गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी के तट पड़ते हैं।

बांग्लादेश को डर है कि इस प्रक्रिया में गंगा और बह्मपुत्र नदी का पानी वापस घूम जाएगा, जिससे उनके यहां के पर्यावरण और लोग, दोनों के लिए खतरा उत्पन्न हो सकता है।

भारत और नेपाल के बीच कई जल-वितरण प्रबंध को लेकर असहमति बनी हुई है। नेपाल को लगता है कि उसे इसकी व्यवहारिकता जांच की चर्चा में शामिल किया जाना चाहिए था।

वैसे उनका यह डर उचित नहीं है। इस प्रक्रिया में पानी का सिर्फ थोड़ा अंश ही भारत की सरहद की ओर घुमाया जाएगा। इस परियोजना से बाढ़ का प्रभाव समाप्त होगा; खरीफ फसल को फायदा पहुंचेगा और विद्युत उत्पादन में मदद मिलेगी। वर्षा ऋतु के जमा पानी को पूरे साल नियंत्रित रूप से छोड़ने से इस इलाके में शुष्क मौसम में भी जल-प्रवाह बढ़ेगा।

अगर भारत में पर्यावरणीय और सामाजिक चिंताओं को मद्देनजर करके नदी जोड़ने वाली परियोजना का उचित ढंग से क्रियान्वयन किया जाता है, तो इससे यहां के पूरे क्षेत्र को लाभ पहुंचेगा। इस परियोजना के संबंध में सभी निर्णय योग्यता के आधार पर लिए जाने चाहिए, न कि नकारात्मक राजनीति के आधार पर, जो दुर्भाग्यवश इस इलाके को खाए जा रही है। **सीएसई/डाउन टू अर्थ फीचर सेवा**

संक्षिप्त खबरें

भारत

लुप्त होने से बचाया

आज भारत में पहली बार पश्चिम हिमालय के कुछेक भू-भागों में पाए जाने वाले संकटग्रस्त चीर फिजेण्ट को बड़ी सफलता से पाला-पोसा जा रहा है। यह साहसिक कार्य राज्य वन्यजीवी विभाग के एक जीवशास्त्री और वन रक्षक, ललित मोहन ने हिमाचल प्रदेश के एक पहाड़ी आवास स्थल, चैल के जीवकगृह में किया। इंटरनैशनल युनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर के रेड बुक में इन संकटग्रस्त प्रजातियों का उल्लेख किया गया है और भारत की सुरक्षित वन्यजीवी प्रजाति सूची की अनुसूची-I में भी ये शामिल हैं। **सीएसई/डाउन टू अर्थ फीचर सेवा**

दक्षिण एशिया

बाहरी घुसपैठ

श्रीलंका में आक्रामक विदेशी प्रजातियां यानी इन्वेजिव एलायन स्पेशीज़ (आईएएस) एक प्राकृतिक वास को खाए जा रही है, जो कि पहले से ही दुनिया के आठ सबसे ज्यादा संकटग्रस्त क्षेत्रों में गिना जाता है। इंटरनैशनल युनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर (आईयूसीएन) के अनुसार, श्रीलंका में पिछले 400 सालों में लुप्त होने वाली तकरीबन 39 प्रतिशत प्रजातियों के लुप्त होने के पीछे आईएएस का हाथ है।

आईयूसीएन के शोधकों ने इस टापू में फल-फूल रहे आक्रामक विदेशी जीव-जन्तुओं की 20 प्रजातियों (जैसे: रेड ईयर्ड स्लाइडर कछुए और चूहे) और आक्रामक विदेशी पेड़-पौधों की 39 प्रजातियों (जैसे जल सम्बूल और कटीली तानतानी) का पता लगाया है। आईएएस के यहां आगमन के पीछे मुख्य रूप से मत्स्य व वनस्पति के बने आभूषणों का व्यापार जिम्मेदार है। श्रीलंका में ये प्रजातियां देसी (स्थानीय) जैव-विविधता को नष्ट करने के अलावा कृषि को भी नुकसान पहुंचा रही हैं। **सीएसई/डाउन टू अर्थ फीचर सेवा**

विश्व

भूख फिर बढ़ी

अभी हाल ही में जारी रिपोर्ट, 'द स्टेट ऑफ फूड इन्सिक्योरिटी इन द वर्ल्ड 2003' के मुताबिक विश्व में भूखे लोगों की संख्या फिर से बढ़ने लगी है। संयुक्त राष्ट्र खाद्यान्न एवं कृषि संगठन द्वारा तैयार इस रिपोर्ट में कहा गया है कि सन् 1995 से 2001 के बीच विकासशील देशों में कुपोषित लोगों की संख्या प्रति वर्ष 45 लाख की दर से बढ़ रही है। वे 17 देश जहां ऐसी स्थिति उत्पन्न हो रही है, उनमें भारत, पाकिस्तान, इंडोनेशिया और नाइजीरिया शामिल हैं। सूखा, एड्स और व्यापारिक बाधाओं के कारण सब-सहारा अफ्रीका की हालत तो और भी ज्यादा नाजुक है। विडंबना देखो कि भूखे लोगों की संख्या में वृद्धि एक ऐसे समय में हो रही है, जब दुनिया के खाद्यान्न उत्पादन में काफी बढ़ौत्तरी हो रही है। इस रिपोर्ट में भी यही कहा गया है कि समस्या भोजन की कमी की नहीं है, बल्कि राजनीतिक इच्छा-शक्ति में कमी ही इसका मूल कारण है। **सीएसई/डाउन टू अर्थ फीचर सेवा**

विज्ञान जगत

पाबंदी लगाने का नतीजा

स्वीडन के अर्बुद वैज्ञानिकों का कहना है कि रसायनों के प्रतिबंधित उपयोग से स्वीडन में नॉन-होजकिन्स लिम्फोमा (एनएचएल) के मामलों में कमी आई है। इस देश में सन् 1991 से लेकर 2000 के बीच कैंसर के मामलों में 0.2-0.8 प्रतिशत तक की कमी आई है — यह स्थिति एनएचएल से संबंधित रसायनों के उपयोग पर 20 साल पहले लगी पाबंदी के कारण बनी है। इन रसायनों में फेनोक्सिया सेटिक एसिड और क्लोरोफिनोल पर पाबंदी लगाई गई और व्यवसाय में जैविक घुलनशील तत्वों के प्रभाव को घटाया गया। यूएस में भी यही प्रवृत्ति देखने को मिली है। यहां सन् 1995 से 1999 के बीच पुरुषों में एनएचएल की घटनाएं 0.9 प्रतिशत तक घट गई है। पिछले 20 सालों में इस देश में सबसे ज्यादा उपयोग किए जाने वाले क्लोरोफेनोक्सी शाकनाशी 2,4,5-टी पर पाबंदी लगाने के कारण ही ऐसी स्थिति खड़ी हुई है। **सीएसई/डाउन टू अर्थ फीचर सेवा**

इन लेखों से संबंधित फोटो के लिए कृपया किरन / अश्वनी - ऑडियो विजुवल यूनिट से kiran@cseindia.org या ashwini@cseindia.org पर सम्पर्क करें।